E-LECTURE
UNIT 4
HISTORY OF INDIA (650-1206 A.D.)

Dr. NANDANI PATHAK
SOS ARCHAEOLOGY DEPARTMENT
10.04.2020

चालुक्य राजवंश
[CHALUKYAS DYNASTY]

चालुक्य वंश की उत्पत्ति के विषय में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। कुछ विद्वान उन्हें 'शूलिक' जाति से सम्बन्धित मानते हैं जिसका वर्णन वराहमिहिर की कृति वृहत्संहिता में प्राप्त होता है। परन्तु **बिसेंट ए. स्मिथ** उन्हें विदेशी मानते हैं तथा उनका सम्बन्ध 'चम्प' जाति से जो कि गुर्जर जाति की ही एक शाखा थी से मानते हैं। नीलकंठ शास्त्री इस वंश का प्रारम्भिक नाम 'चलक्य' मानते हैं।

चालुक्य-वंश की मुख्य शाखा जिसने इस वंश के साम्राज्य की नींव डाली, बादामी अथवा वातापी (बीजापुर जिला) के चालूक्यों की थी। बादामी के चालुक्यों को प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्य भी पुकारा गया है। उनकी एक शाखा वेंगी अथवा पिष्टपुर के पूर्वी चालुक्य थे जिन्होंने 7वीं सदी के प्रारम्भ में अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की परन्तु वे अंत में राष्ट्रकूट-शासकों के अधीन हो गये। इनकी एक शाखा कल्याणी के चालुक्य थे जिन्हें बाद में पश्चिमी या पिछले चालुक्य भी पुकारा गया और जिन्होंने 10वीं सदी के उत्तरार्ध्द में राष्ट्रकूट-शासकों से अपने वंश के राज्य को पुनः छीन लिया और एक बार फिर चालुक्यों की कीर्ति को स्थापित किया। **ह्वेनसांग** के विवरण में पुलकेशियन् द्वितीय को स्पष्टतः क्षत्रिय कहा गया है। अतः उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में चालुक्य शासकों को क्षत्रिय जाति से सम्बन्धित माना जा सकता है।

1. बादामी के चालुक्य (Chalukyas of Badami)

कैरा तामपत्र (72-73ई) से ज्ञात होता है कि वातापी अथवा बादामी के चालुक्य राजवंशों का प्रथम ऐतिहासिक व महत्वपूर्ण शासक जयसिंह था। बादामी के चालक्यों ने छठी सदी के मध्य से लेकर 8वीं सदी के मध्य तक के प्रायः 200 वर्षों के समय में दक्षिणापथ (विन्ध्याचल पर्वत और कृष्णा नदी के बीच के भाग को, जिसमें पश्चिम में महाराष्ट्र और पूर्व में तेलुगू भाषा-भाषी प्रदेश सम्मिलित था, साधारणतया दक्षिणापथ पुकारा गया है) में एक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण किया।

इस वंश के प्रथम शासक जयसिंह के पश्चात् उसका पुत्र रनराग सिंहासन पर बैठा। रनराग का पुत्र पुलकेशियन् प्रथम (535-566 ई) हुआ जिसने वातापी (बादामी) के किले का निर्माण किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। उसका उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मन प्रथम (566 अथवा 567-597 अथवा 598 ई) था जिसने कदम्ब,कोंकण,नल आदि राजवंशों के राजाओं को परास्त करके अपने राज्य का विस्तार किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके भाई मंगलेश (597 अथवा 598-610 अथवा 611 ई) ने गद्दी के उत्तराधिकारी पुलकेशियन् द्वितीय का संरक्षक बनकर शासन किया। उसके पश्चात् पुलकेशियन् द्वितीय शासक हुआ।

पुलकेशियन् द्वितीय (610 अथवा 611 से 642 ई.) ऐहोल-प्रशस्ति के अनुसार कीर्तिवर्मन के वीर पुत्र पुलकेशियन् II ने अपने कपटी चाचा मंगलेश की हत्या करके बलपूर्वक चालुक्य राज्य प्राप्त किया। पुलकेशियन् II के राज्यकाल के तीसरे वर्ष के हैदराबाद ताम्रपत्र लेख (912-13 ई) के अनुसार उसने बादामी का राजसिंहासन सम्भवतः 609-610 ई. में प्राप्त किया था। इस कारण पुलकेशियन के शासन का प्रारम्भ संघर्ष और कठिनाइयों से आरम्भ हुआ। परन्तु उसने अपनी योग्यता से चालुक्यों को श्रेष्ठता प्रदान की। उसने दक्षिण में कदम्बों को परास्त किया, मैसूर के गंग और आलूप शासकों को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया, कोंकण के मौर्यों को परास्त करके उनकी राजधानी राजपुरी (एलिफेण्टा) पर अधिकार कर लिया, उत्तर में लाट, मालव और गुर्जर-शासकों को अपनी अधीनता मानने के लिए बाध्य किया, पूर्व में कलिंगों को परास्त किया और पिष्टपुर को जीत कर अपने भाई विष्णुवर्धन (जिसने पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्यों के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की) को अपना राज्यपाल बनाया। परन्तु उसकी सबसे प्रशंसनीय विजय सम्राट हर्ष के विरुद्ध थी जिसके कारण हर्ष दक्षिण भारत में प्रवेश न कर सका। पुलकेशियन द्वितीय के समय में चालुक्यों और सुदूर दक्षिण के पल्लव-शासकों में भी संघर्ष आरम्भ हआ। पुलकेशियन ने पल्लव-शासक महेन्द्रवर्मन् को परास्त किया और उसके राज्य की सीमाओं को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। तत्पश्चात् उसने चोल,चेर और पाण्ड्य राज्यों से मित्रता की जिससे वे पल्लवों के विरुद्ध उसके सहायक बने रहें । परन्तु महेन्द्रवर्मन् के उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मन (630-668 ई) ने उस पराजय का बदला लिया। उसने पुलकेशियन को पराजित ही नहीं किया अपितु चालुक्यों की राजधानी बादामी पर अधिकार कर लिया। 642 ई.के लगभग इन्हीं युद्धों में पुलकेशियन् मारा गया। इस प्रकार पुलकेशियन् अन्त में पल्लवों से पराजित हआ।

परन्तु उसने चालुक्यों को जो श्रष्ठता और गौरव प्रदान किया था वह उसकी मृत्यु के पश्चात् भी समाप्त न हो सका। उसके उत्तराधिकारियों ने पल्लवों से संघर्ष को जारी रखा।

विक्रमादित्य प्रथम (655-681 ई.)- पुलकेशियन् द्वितीय की मृत्यु के समय पल्लवों ने बादामी और चालुक्यों के राज्य के दक्षिणी भाग पर अधिकार कर रखा था। इसका लाभ उठाकर चालुक्यों के राज्यपालों ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। पुलकेशियन के पुत्र पल्लवों से संघर्ष करते रहे और सम्भवतया आपस में भी संघर्ष करते रहे जिसके कारण 642ई से प्राय.655 ई. तक हमें किसी चालुक्य-शासक के नाम का पता नहीं लगता। अन्त में इस संघर्ष में पुलकेशियन् का छोटा पुत्र विक्रमादित्य सफल हुआ। उसने बादामी पर अधिकार कर लिया और पल्लवों को अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। विक्रमादित्य अपने पिता के समान ही योग्य था। उसने चोल चेर और पाण्डय शासकों को परास्त किया। उसने अपने वंश के अपमान का बदला लेने के लिए पल्लव-शासक महेन्द्रवर्मन् द्वितीय और परमेश्वरवर्मन प्रथम से युद्ध किये, उनको पराजित किया तथा कुछ समय के लिए उनकी राजधानी काँची पार अपना अधिकार कर लिया। परन्तु उनकी यह विजय स्थायी नहीं रही। बाद में परमेश्वरवर्मन प्रथम ने विक्रमादित्य को परास्त करके अपने सम्पूर्ण राज्य को चालुक्यों से छीन लिया।

विक्रमादित्य के महत्वपूर्ण उत्तराधिकारी विनयादित्य (681-696 ई) और विक्रमादित्य द्वितीय (733-744 ई) हए। विनयादित्य ने पल्लवों से युद्ध करने के अतिरिक्त उत्तर-भारत पर भी सफल आक्रमण किये जबकि विक्रमादित्य द्वितीय ने पल्लव-नरेश परमेश्वरवर्मन को परास्त करने में सफलता पायी।

कीर्तिवर्मन (747-757 ई.) यह बादामी के चालुक्यों का अन्तिम शासक हआ। पल्लव-शासकों से हुए संघर्षों ने चालुक्यों की शक्ति को दुर्बल बना दिया था। अपनी दुर्बल स्थिति में कीर्तिवर्मन द्वितीय अपने उत्तर-भारत के राज्यपालों की ओर पूर्ण ध्यान न दे सका। उन्हीं में से राष्ट्रकूट-वंश के दन्तिदुर्ग ने कीर्तिवर्मन् द्वितीय के राज्य के अधिकांश भाग को जीतकर राष्ट्रकूटों के वैभव-काल को आरम्भ किया। दन्तिदुर्ग की मृत्यु के पश्चात् कीर्तिवर्मन् द्वितीय ने अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयल किया परन्तु वह असफल हुआ और दन्तिदुर्ग के उत्तराधिकारी कृष्णा प्रथम ने उसके बचे हुए राज्य को भी उससे छीनकर बादामी के चालुक्यों के राज्य को समाप्त कर दिया।

चालुक्य समाज और संस्कृति : वतापि (वादामी) के चालुक्यों का शासन प्रायद्वीपीय दक्कन (पश्चिमी दक्षिणापथ) के इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण युग माना जाता है। उन्होंने लगभग दो शताब्दियों तक शासन किया। इस दीर्घकालीन अवधि में चालुक्य नृपतियों ने साहित्य, कला तथा धर्म के आदि संवर्द्धन में विशिष्ट योगदान किया। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ के लोगों के स्वभाव में सौम्य और उग्रभाव का समन्वय था। युद्ध और अपकार की स्थिति में उनमें जो क्रूरता और

उग्रता थी वह सामान्य स्थिति में नहीं देखने को मिलती थी। सामान्य लोग मुख्यतया खेतिहर किसान शान्तिप्रिय थे। वातापि के चालुक्य नृप भी धार्मिक दृष्टि से सद्भाव और समन्वय को मान्यता प्रदान करते थे।

शासन-प्रबन्ध- अन्य समकालीन राजतन्त्रों की भाँति वातापी के चालुक्य भी निरंकुश राजतन्त्र के अधीन अपने साम्राज्य का संरक्षण करते थे। राजा को असीमित अधिकार होते हुये भी उसका उपभोग जनहित में ही किया जाता था। यद्यपि किसी मन्त्रिमण्डल जैसे संगठन की सूचना चालुक्य अभिलेखों से नहीं मिलती. न किसी मन्त्री के सम्बन्ध में ही कुछ उल्लेख मिलता है किन्तु राजाओं से नहीं मिलती, न किसी मन्त्री के सम्बन्ध में ही कुछ उल्लेख मिलता है किन्तु राजाओं के द्वारा 'मन्त्रोत्साह' शक्ति नीति के प्रयोग का वर्णन मिलता है। मन्त्र के अन्तर्गत यह भाव है कि राजा समय-समय पर अधिकारियों आदि से विचार-विमर्श करके ही कार्य करता था। चालुक्य राजाओं के विषय में पर्याप्त सूचना मिलती है कि वे अपने राज्य में भ्रमण करते हुये शासन की स्थिति का प्रत्यक्ष परिचय रखते थे। युद्ध के अवसर पर वे युद्ध का नेतत्व सँभालते थे। केन्द्र से दूर रहते हुये भी वहाँ शासन पर दृष्टि रखते थे। सुविधा के लिये अपने युवराज आदि को अपने स्थान पर स्थानापन्न करते थे जिससे कि केन्द्रीय शासन उपेक्षित न रह सके। जब उत्तराधिकारी अल्पवयस्क होता था. तो राजा अपने भाई को या अन्य किसी सम्बन्धी को शासन सत्ता सौंप दिया करता था। जैसे-जैसे चालुक्य साम्राज्य का विस्तार होता गया, इसकी आवश्यकता समझा गई कि दूरस्थ क्षेत्रों में उपराजा, विश्वसनीय सामन्त और कहीं-कहीं तो नाममात्र का संरक्षण स्वतंत्र शाखा राज्य की भी स्थापना कर दी जाती थी। पुलकेशिन द्वितीय ने विजयवर्धन के अधीन वेगी में पूर्वी चालुक्यों को शाखा-राज्य की स्थापना की थी। **चालक्य साम्राज्य के सैनिक प्रशासनिक ढाँचे मे सामन्तों का विशेष योगदान था। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि** अलुप, सिन्धु, सेन्ट्रक, वाण, गङ्ग, तेलुगु, चोड आदि सामन्तों के सहयोग पर ही चालुक्य प्रशासन सैनिक शक्ति पर निर्भर था। इन सामन्त राज्यों के अतिरिक्त मुख्य चालुक्य भूमि के अनेक विषय थे जिनके प्रशासक को विषयपति भी कहते थे। राजा के आदेश को 'राष्ट्रापितम्' कहते थे ' जो मौखिक होते थे |

ग्राम- प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। उसका प्रमुख 'गामुण्ड' कहलाता था, जो राजा की तरफ से नियुक्त होता था। उसके सहयोगी अधिकारी 'कर्ण' कहलाता था, जो राजा की ओर से नियुक्त होता था। ग्राम मे जो बड़े-बूढ़े और प्रभावी व्यक्ति होते थे उन्हें 'महाजन' कहते थे। अवैतनिक रूप से इनका ग्राम प्रशासन मे बड़ा योगदान होता था। भूमिदान और भूमिस्थांतरण जैसे अवसरों पर उसकी स्वीकृति और उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। कर-व्यवस्था में समानता लाने की पूरी कोशिश की गयी थी। प्राय: सामन्त अथवा अधिकारी ही कर वसूल करते थे। राजा को प्रत्यक्ष रूप से भेंट आदि प्रजा से मिलता था। विभन्न प्रकार के विशेष कर भी लगाये जाते थे, यथा- चाट, भाट, कुषीद, निधि, उपनिधि, क्लिस, उप क्लिस उपरिकर, उपुङ्ग, परिकर आदि।

व्यापार- पर लगे करों में प्रमुख कर मारुज्च, आदित्युज्च, आदि थे। इनमें से कुछ स्थानीय कर भी थे। करों से मुक्ति भी दी जाती थी। ऐसी स्थिति में 'सर्व आदान विशुद्ध' कहते थे, जिसमें किसी भूमि-विक्रय या दान आदि पर कोई कर नहीं लगाया जाता था। पराजित शत्रु पर कुछ कर भी लगता था। तुलामान को भी नियमित करने का प्रयत्न चालुक्य नरेशों ने किया था। गदवाल और कर्नूल दान पत्रों में 'राजमान' का उल्लेख आया है।

धर्म-वातापी के चालुक्य साम्राज्य में वैदिक और पौराणिक धर्म के अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्म सफलता पूर्वक चल रहे थे। ह्वेनसांग के विवरण से भी ज्ञात होता है कि महाराष्ट्र में नासिक के आस-पास अशोक कालीन स्तूप थे और शताधिक बौ द्ध मठ थे जिनमें सहस्त्रों भिक्षु साधना करते थे। चालुक्य नरेश अधिकांशतः शैव और विष्णु के उपासक थे। उनके द्वारा वादामी, पट्टदिकल, अयहोलि आदि में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ। यद्यपि किसी नरेश ने जैन धर्म स्वीकार नहीं किया किन्तु उनकी सद्भावना जैन धर्म के प्रति थी। पुलकेशिन द्वितीय की जैन धर्म के प्रति उदार दृष्टि थी। जैन धर्म के प्रति चालुक्य परिवार की अनेक रानियों की आस्था थी जिनके जैन मंदिर भी निर्मित हुये। कुटकुमादेवी, और कलियम्मा के द्वारा जैन मंदिरों का निर्माण हुआ। वैदिक धर्म और यज्ञों के प्रति भी चालुक्य नरेशों की अधिक रुचि थी। अयहोलि अभिलेख में ही उल्लेख है कि पुलकेशिन प्रथम, कीर्तिवर्मन प्रथम, मङ्गलेश और पुलकेशिन द्वितीय द्वारा सम्पादित अश्वमेध, श्रौतादि यज्ञों का उल्लेख मिलता है। इनमें से अनेक के द्वारा ब्राह्मण, माहेश्वर, परम वैष्णव आदि उपाधियाँ धारण की गई। विशेष अवसरों पर-यथा, ग्रहण आदि पर उनके द्वारा व्रत दान आदि सम्पन्न होते थे।

शिक्षा एवं साहित्य- वातापी के समाज के लोगों की विद्या से स्वाभाविक रुचि थी, जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने भी किया है। अभिलेखों में युवराजों की शिक्षा आदि का उल्लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि युवराजों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। पुलकेशिन प्रथम को अध्ययन काल में मनु के धर्म शास्त्र, पुराण और रामायण की शिक्षा दी गयी थी। मङ्गलेश को विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान कराया गया था। वातामी चार विद्या और कला का केन्द्र था जहाँ सहस्त्रों द्विज 'चौदह शास्त्रों' का अध्ययन करते थे। इनमें 4 वेदाङ्ग, पुराण, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र आदि सम्मिलित थे। कछ अभिलेखों में 'श्री महाचतुविद्या का उल्लेख आया है जो अन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्ड नीति समझा जा सकता है। बोल चाल की भाषा कन्नड थी जो प्राकृत भाषा कहलाती थी परन्तु अभिलेखों की भाषा संस्कत थी। ऐहोल लेख तत्कालीन उत्कष्ट काव्य रचना का प्रतिनिधित्व करता था। सम्भ्रान्त वर्ग की भाषा संस्कत थी। इस काल के सुप्रसिद्ध कवियों एवं विद्वानों में संस्कृत व्याकरण शब्दावतार रचनाकार गंगराज दर्विनीत उल्लेखनीय है।जैनेन्द्र व्याकरण नामक ग्रन्थ भी इसी समय लिखा गया था। इस काल के अन्य कवियों एवं विद्वानों में यशस्तिलक तथा नीति वाक्या-मृतम के लेखक सोमदेव सूरि, तत्वार्थ महाशास्त्र की चूडामणि

टीका के रचायिता तुम्बुलाचार्य, प्राकृत, कन्नड़ तथा संस्कृत के महाकवि श्यामकृण्डाचार्य तथा आदिपुराण तथा विक्रमार्जुन विजय के रचयिता महाकवि पम्प उल्लेखनीय है । पम्प की कन्नड़ कवियों में सर्वाधिक ख्याति है।

चालुक्य कला-कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में चालुक्यों ने अपना कीर्तिमान स्थापित कर दिया। इनकेसंरक्षण में निर्मित विहार तथा मन्दिर वास्तुकला में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनके शासन काल में स्थापितों ने कई नये प्रयोग किये। विहार शैली पर प्रकृत शैल-उत्कीर्णित गुफा संरचनात्मक मण्डपों का भी निर्माण हुआ और पत्थरों को जोड़कर (Structural) मंदिर वस्तु की भी परम्परा चली। शैली की दुष्टि से नागर और द्रविड़ दोनों ही तथ्यों के आधार पर अलग-अलग मंदिर भी बने और एक नई शैली. बेसर शैली के अन्तर्गत भी मंदिर निर्मित हुये। प्रभाव की दृष्टि से आरम्भ में गुप्त वास्तु और मूर्ति शिल्प अयहोलि. बादामी और पट्टदिकल के वास्तु और मूर्तिशिल्प का अनुप्रेरक है, किन्तु कालान्तर में जब पल्लवों का राजनीतिक सम्पर्क चालुक्यों से हुआ तो पल्लव मूतिशैली (मामल्ल शैली) का प्रभाव बादामी के मुर्ति की कला बिशेष रूप में परिलक्षित हुआ। विरुपाक्ष मंदिर पर यह प्रभाव सर्वाधिक है।

चालुक्यों संरक्षण में अयहोलि (ऐहोले) वस्तुतः मंदिरों के नगर के रूप में विकसित हुआ, जहाँ और सातवीं शती के बीच लगभग 70 मन्दिरों का निर्माण हुआ। यहाँ के प्रसिद्ध मन्दिरों में लांडखाँ मंदिर, दर्गा मन्दिर, हच्ची मल्लीगुडि मन्दिर, मेगुती मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चालुक्यों की राजनगरी वातापी या वादामी भी चालुक्य वास्तु का केन्द्र रहा है। यहाँ पर स्थित चार मंदिरों में तीन ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित है और एक जैन। ऐहोल मन्दिर के वास्तु-विधान की तुलना में यहाँ का वास्तु-विधान भिन्न है और प्रकत शैल को उत्कीर्णित करके बनाये गये हैं। यहाँ के चारो मंदिर में वैष्णव मंदिर सबसे प्राचीन (570 ई०) है। जैन मंदिर सबसे बाद का है।

नागर और द्रविड़ शैली का प्रयोगात्मक प्रयास **पापनाथ मंदिर** में प्रथम हुआ। यदि नागर शैली का शिखर इसमें न होता तो यह सम्पूर्णतया द्रविड़ शैली (मामल्ल शैली) का ही नमूना ठहरता। इस नागर तथा द्रविड़ शैली का मिश्रित रूप हमें विरुपाक्ष मंदिर में मिलता है। विरुपाक्ष मंदिर अतीत काल के उन दुर्लभ भवनों में है जिनमें उन व्यक्तियों की आत्मा अभी भी निवास करती है, जिन्होंने अपनी कल्पना को अपने हाथों से उसे चरितार्थ किया। इस मंदिर का निर्माण मामल्ल शैली के मन्दिरों की प्रत्यक्ष अनुभूति और प्रेरणा के आधार पर किया गया-और बहत संभव है कि इसके शिल्पी भी पल्लव क्षेत्र से बुलाये गये हैं। बादामी और पट्टदिकल के बीच स्थित महाकटेश्वर मन्दिर नागर शैली के शिखर से युक्त त्रिरथ प्रकार का है। मध्य रथ के समीप के उपमन्दिर पंचरथ का पूर्वाभास प्रकट करते हैं। वर्गाकार विमान के आगे एक मण्डप और उसके बाद अर्द्ध मण्डप इस मंदिर के प्रमुख वास्तु-तत्व हैं। इसी मंदिर के प्राङ्गण में स्थित मल्लिकार्जुन मंदिर इसी आकार प्रकार का है। अन्य चालक्य मंदिरों में वादामी का शिवालय और मल्लिकार्जुन,

पदिकल का संगमेश्वर आदि भी भव्य और सुन्दर है। तुंगभद्रा की उपत्यका में आलमपुर (ब्रह्म मन्दिर) भी चालुक्य कालीन वास्तु का प्रतिनिधत्व करते हैं।

मूर्तिकला-मूर्ति शिल्प की दृष्टि से चालुक्यों के संरक्षण में कुछ विशिष्ट प्रयोग किये गये। इस प्रयोग में गुप्त, वेङ्गी उभाड़ा गया। चालुक्य मूर्तियाँ स्वतन्त्र रूप से विकसित न होकर मन्दिर वास्तु के अलंकरण के लिये बनायी गई थी। ये मर्तियाँ अपनी साज-सज्जा, भाव-भंगिमा, सौन्दर्य, कथात्मक प्रसंग, आध्यात्मिक गरिमा, प्रवाह, देवात्मक स्वरूप आदि की दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय है। गुफा मन्दिरों में पारम्परिक कथाएँ। अत्यन्त सहज रूप में अंकित हैं।

चित्रकला वादामी के गुफा मण्डपों में, कुछ चित्रकर्म के भी उदाहरण मिलते हैं जो कि मुख्यतया मङ्गलेश के समय में अंकित किये गये। उनमें राजमहल के दृश्य, नृत्यमण्डली, विद्याधर आदि के अंकन अत्यन्त ललित है। शैली की दृष्टि से बादामी के चित्र सामान्य रूप से अजन्ता की समकालीन चित्रशैली का निर्वाह करते हैं यद्दपि इनमें इतनी मौलिकता और सम्भावनाएँ हैं, जो परवर्ती काल के चित्रों (पल्लव) को भी अनुप्राणित कर सकें।